



E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
IJH 2020; 2(2): 117-120
Received: 06-05-2020
Accepted: 09-06-2020

प्रीति प्रिया

शोधार्थी, विश्वविद्यालय, इतिहास
विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा,
बिहार, भारत

मध्यकालीन मिथिला के समाज पर शाक्त धर्म का प्रभाव

प्रीति प्रिया

सारांश

मध्यकालीन मिथिला में शुक्ल यजुर्वेद के समरस्ता का सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी और शास्त्रकार योगीन्द्र नाम के धर्म-शास्त्र शिरोमणि हुए। जैसा कि मिथिला मिहिर के 1936 के प्रकाशन में सम्पादक सुरेन्द्र झा सुमन ने इंगित किया है कि न्याय सूत्रकार गौतम, पुराण प्रसिद्ध मुनि है किन्तु न्याय शास्त्र के आचार्य के रूप में योगीन्द्र का नाम बहुत ही सम्मान के साथ लिया जाता है और पुराणों ने इनका परिचय (मिथिला रहस्य: सः योगीन्द्रः) कहकर कराया है। सांख्य शास्त्र के आविष्कारकर्ता कपिल मुनि जो एक पुराने ऋषि भी हैं और प्रारंभिक मध्यकाल के माने जाते हैं, का वास भी मिथिला में ही था। कुछ विद्वानों का मत है कि वे कपिलेश्वर स्थान के रहने वाले थे तो कुछ दूसरों का मानना है कि वे दरभंगा शहर स्थित कादिराबाद, जो तब कपिलावाद के नाम से जाना जाता था, के रहने वाले थे। एक मत प्रवर्तक जहाँ प्रो. डा. सत्य नारायण ठाकुर हैं वही दूसरे मत के संस्थापक बिहारीलाल फितरत को कहा जाता है। इसके अलावा इसी कालखण्ड के विभिन्न चरणों में शतानन्द, विभाण्डक और इनसे पूर्व, सहरसा के मधेपुरा स्थित सिंहेश्वरस्थान मंदिर के संस्थापक ऋषि श्रृणि थे जो पुराने प्रसिद्ध होने से सभी के परिचित भी हैं और श्रद्धा भाजन भी हैं। इनके अलावे मिथिला के विभूतियों में पुराण-प्रसिद्ध कणाद न्याय और परमाणु के प्रवर्तक थे, साथ ही कौशिक आदि का भी मिथिला के विभूतियों और सिद्धियों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

मुख्य शब्द: मध्यकालीन मिथिला, समाज, शाक्त धर्म

प्रस्तावना

शाक्त धर्म, उसकी परम्परा, उसका सामाजिक स्वरूप, उसकी पूजा पद्धति तथा उसके विधि-विधान के बारे में स्पष्ट रूप से वर्णन कर दिया गया है।⁽¹⁾ अतः उन्हें पुनः दुहराने की आवश्यकता यहाँ नहीं है। अब इसका दूसरा पहलू यह है कि मध्यकालीन भारत अर्थात् मुस्लिम काल (1196 ई० से लेकर 1760 ई० तक) में इसका स्वरूप क्या था और इस काल के समाज पर उसका कैसा प्रभाव पड़ रहा था? चूँकि संस्कार और संस्कृति का प्रभार दूरगामी होता है; अतः छठी शताब्दी ई० का प्रभाव भी दूरगामी हुआ। अतः उक्त बातों के बावजूद धर्म पर परे प्रभाव से जोड़कर देखना आवश्यक है।

उस काल के विभिन्न इतिहासकारों, यथा- इतिहास शिरोमणि डॉ. ईश्वरी⁽²⁾ प्रसाद से लेकर आर.एम. राय और एल.एम. चौधरी तक, ने उस काल को भारतीय समाज के लिए, इसके धर्म के लिए, धार्मिक विधान और पद्धतियों के लिए संक्रमण का काल कहा है। संक्रमण से अभिप्राय यह है कि जब एक वस्तु किसी दूसरे वस्तु से टकराती है तो निश्चित रूप से एक छुट जाता है और दूसरा जुड़ जाता है; ऐसी ही क्रिया को महान् वैज्ञानिक सर आईजेक न्यूटन ने⁽³⁾ अपने सापेक्षवाद के सिद्धान्त में वर्णित किया है।

उन्होंने अपने इस सिद्धान्त में कहा है कि जब किसी स्थिर वस्तु पर कोई बाह्य बल लगाया जाता है तो उसमें चंचलता आती है और स्वतः रूप से उस वस्तु के स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है। ठीक उसी तरह, जब शैव धर्म से⁽⁴⁾ वैष्णव धर्म का सिद्धान्त टकराया तो प्रतिक्रिया स्वरूप जो नया धर्म उपस्थित हुआ, वह 'शाक्त' धर्म था। वह 'शाक्त' शब्द ही एक ऐसा शब्द है जो अत्यन्त विलक्षण, विशिष्ट प्रभावकारी और सम्पूर्ण रूप से चुम्बक के तरह खिंचाव से युक्त है और चूँकि इसमें मातृत्व की धारणा प्रबल ममत्व, स्नेह, सद्भावना, श्री सम्पदा और सन्मति लिए हुए था। अतः, तीनों धर्मों, क्रमशः वैष्णव धर्म, शैव धर्म और शाक्त धर्म में यह प्रधान हो गया। और उससे भी बड़ी बात यह थी कि वैष्णव धर्म में जटिलताएँ बहुत अधिक थीं खान-पान, रहन-सहन एवं जीवन-यापन के ढंग में जटिल परहेज को स्थान दिया गया था। जैसे- मांसाहार पर प्रतिबंध, अहिंसावाद की धारणा का प्रतिपादन, स्त्री सम्पर्क से वर्जित रहना, आदि कुछ ऐसी बातें थीं जिन्हें मानव स्वीकार नहीं कर सकता था। इसलिये उसने इससे सरल धर्म, शैव धर्म को स्वीकार किया। शैव धर्म में किसी बात का परहेज नहीं था। यहाँ तक कि नशा करना, पशुओं के समान दुराचार करना माँस-मदिरा का सेवन करना इनकी मूल प्रकृति थी। ये पशुवत थे अतः इनके देवता को पशुपति⁽⁵⁾ कहा गया और पशुपति 'शिव' है। वस्तुतः, वह पहला ऐसा देवता था जिसने स्वयं नशा के लिए जहर पीया था और जहर से

Corresponding Author:

प्रीति प्रिया

शोधार्थी, विश्वविद्यालय, इतिहास
विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा,
बिहार, भारत

वचाव के लिए जहरीले सर्पों को गले में धारण किया था। इस शिव के आराधना का मूलमंत्र ही था— “विषयः विषयोर्यादम” अर्थात् विष से विष कटता है, जहर से जहर कटता है और पाप से पाप कटता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर इस पशुपति अनुयायियों ने खुशी-खुशी शैव धर्म ग्रहण किया था। इस तरह जहाँ वैष्णव धर्म⁽⁶⁾ को वैदिक-आर्य का धर्म कहा जाता है वही शैवों के धर्म को अनाजों, विरतियों, दासों एवं दस्युओं का मोह धर्म कहा जाता है। वैष्णव धर्म में शूद्रों एवं महिलाओं को, अर्थात् समाज के 75 प्रतिशत से ज्यादा आबादी को न तो इसे मानने की सुविधा प्रदान की गई न ही दीक्षित किया गया। यहाँ तक कि महिलाओं और शूद्रों को वेद पढ़ना तो दूर, उसे छुने की भी मनाही की गई। हालांकि इस संदर्भ में एक तर्क है मुखों एवं अपवित्रों के लिए जायज प्रतीत होते हैं किन्तु पढ़ी-लिखी विदुषी तथा सदाचारी महिलाओं को वेद पाठ से रोका जाना कुछ अटपटा सा लगता है।

अपनी विमत्स और कापालिक क्रियाओं के कारण मध्यकाल के आगमन तक तो यह धर्म समाज का मुख्य धर्म बना रहा। और, सिंधुघाटी के लोग ही नहीं बल्कि दुनियाँ भर के लगभग सभी सभ्यताओं के लोग लठ स्वरूप शिव को अपना देवता एवं जिसकी लाठी उसकी भैंस⁽⁷⁾ को अपना धर्म मानते रहे।

सर्वत्र आर्यों के आगमन पर इसका स्वरूप बदल गया, समाज शिक्षित, सुसंस्कृत होने लगा और मौखिक दर्शन ने वैदिक वाङ्मय का स्थान ले लिया। किन्तु, शैव धर्म में शक्ति का एक स्रोत हुआ करता था जिसका उत्स थी महाकाली, जिससे शक्ति का उद्गम और विकास होता था। इस महाकाली को शैवों ने परिष्कृत और परिमार्जित बना दिया और अब यह अर्द्ध नग्न देवी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित महालक्ष्मी और सरस्वती बन गई और इनकी शक्तियों का उद्गम स्थल बनीं दुर्गा भगवती और धर्मों के बीच हुए देवासुर संग्राम को अंत करने का श्रेय इसी शक्ति की उद्गम दुर्गा को माना गया। अब, चूँकि सारी शक्तियाँ दुर्गा के तीन स्वरूपों महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती में केन्द्रित हो गयी और दोनों ही धर्म अर्थात् वैष्णव और शैव जो अपनी वर्चस्व की लड़ाई लड़ रहे थे, उसे समाप्त करते हुए शक्ति ने अपने स्वरूप को विस्तारित कर दिया। पढ़े-लिखे लोगों में वैदिक-क्रियाओं की प्रधानता इस धर्म का स्वरूप बनी रही। वहीं, मर्यादाहीन असुरों तथा मूर्ख शूद्र-सम्प्रदाय के बीच तांत्रिक शक्तियाँ विभिन्न देवी देवताओं के नामों से समाज में अपनी जगह बना ली। मध्यकालीन विश्व पर शाक्त-धर्म की सत्ता का वर्चस्व वस्तुतः इसी काल में स्थापित हुई।

वेदों की गंभीर ज्ञान को लेकर पुराणों⁽⁸⁾ का निर्माण हुआ। अठारह पुराणों में जहाँ जातियों का उद्भव और विकास हुआ वहीं सभी जातियों के लिए धर्म और पूजा पद्धतियों का भी निर्माण हुआ; जो थोड़े परिवर्तन के साथ आधुनिक समाज के साथ देश काल और पात्र के सुविधा अनुसार भी स्थापित हुआ।

चूँकि, आदि काल से आज तक दुनिया का समाज भारत के मिथिला के समाज के तरह ही तीन⁽⁹⁾ भागों में विभक्त रहा है— यथा— (1) उच्च वर्ग (2) मध्यम वर्ग (3) निम्न वर्ग। इन तीनों वर्गों में भी आपसी असमानताओं— जैसे— धन, विद्या, बुद्धि, विवेक, काज कला, जीवन-पद्धति तथा तत्जन्य रहन-सहन का स्थल काल और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। फलस्वरूप धर्म में भी न्यूनाधिक परिवर्तन हुए। मध्यकालीन मिथिला और प्राचीनकालीन मिथिला में यह अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्राचीन कालीन मिथिला के तीनों ही वर्गों के समाज धर्मशील भी थे और सामाजिक मेरुदण्ड भी धर्म ही था, समाज का अधिकांश समय शुभकार्यों, यथा— पूजा-पाठ, खेतीबारी, आपसी भाईचारा, आचार-विचारों के आदान-प्रदान, गृहकार्य, शिक्षा, चिंतन-मनन, आदि में ही बीतता था। समाज वैचारिक परम्पराओं पर टीकी हुई थी। अर्थ व्यवस्था बहुत कमजोर था। राजा और प्रजा में कहीं दूर का कोई संबंध था।

किन्तु समाज पर राजा का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं था। गाँव में ही जो धनी व्यक्ति थे उन्हीं की मान्यता राजाओं की तरह थी और वे सार्वजनिक कार्यों में खुलकर अपने सामाजिक भाई-बंधुओं की मदद किया करते थे।

चूँकि, मंदिरों ने इस काल में सम्पूर्ण मिथिला क्षेत्र में कहीं भी पक्का भवन का स्वरूप ग्रहण नहीं किया था और न तो देवी-देवताओं की पत्थरों या धातुओं की मूर्तियाँ ही थी। यदि थोड़ी मात्रा में थी भी तो वह राजा की ओर से संयुक्त नगरों में ही थी। परिणाम यह था कि ग्रामीण परिवेश के मंदिरों का स्वरूप जहाँ विकसित था वहाँ झोपड़ियों का था इसके अतिरिक्त कुछ गाँवों में तो मंदिरों का कार्य किसी वटवृक्ष, अश्वत्थवृक्ष (पीपल) के साथ-साथ कोई भी घना बड़ा पेड़ यथा— महुआ, आम, पलास, ईमली, नीम आदि पूर्ण किया करते थे। इन वृक्षों के नीचे ग्राम देवता या देवी की पीड़ी बनाई जाती थी और उन्हें पूजा जाता था। अधिकांश गाँवों में ब्रह्म-देवता⁽¹⁰⁾ की उपासना होती थी और उनके साथ-साथ किसी तरह की देवी, भूत-प्रेत, पिचास आदि के पूजा-पद्धति की प्रथा भी प्रचलित थी। ब्रह्म वे कहलाते थे जो सभी तरह के भूत-प्रेत, पिशाच आदि के शासक होते थे। यदि कोई कुमार ब्राह्मण युवावस्था में काल-कवलित होता था तो वह ब्रह्म बन जाता था, ऐसी मान्यता थी। साथ ही यदि कोई कुमारी लड़की-शैशव को पार कर युवा-अवस्था के दहलीज पर पहुँची हो और किसी कारणवश काल-कवलित हो जाय तो उसकी आत्मा को देवी कहा जाता था। उस तरह देवी को भी समान दर्जा प्राप्त था।

किसी तरह के अपराध होने पर ये दोनों ही दण्ड देते थे। दण्ड-रोग, ब्याधि आदि के स्वरूप के साथ-साथ आकरिमिक मृत्यु का कारण भी बन जाता था, ऐसी समाज में मान्यताएँ थी। अतः समाज का हर वर्ग इन्हें सालाना पूजा देता था। इनके पूजा पर विशाल आयोजन होती थी, जिसमें ब्रह्म-भोज, कुमारी-भोज, के साथ वटुक भोजन की प्रथा भी थी। लोग कहते थे कि ऐसी क्रिया करने से गाँव में शांति बनी रहती थी, अग्नि-भय समाप्त हो जाते थे। उपज अच्छी होती थी और लोग खुशहाल रहते थे। ब्रह्म के साथ-साथ कारिख-देवता, गौड़ैया-देवता तथा पंचभगिनि त्रिपुर-सुन्दरी-देवी, बाल-गोपाल, श्री कृष्ण, सीता-राम, हनुमान सहित अनेकों देवी-देवताओं की पूजा होती थी। मिथिला में नदियों की भी पूजा होती थी, जिनमें-कमला, कोसी, गंडक, बागमति, आदि प्रमुख हैं। मिथिला के दक्षिण भागों में गंगा और पूर्वी भागों में काली-कोशी की पूजा होती थी। इन नदियों की पूजा बाढ़ से बचने और कृषि कार्य में सिंचाई की सुलभता के लिए की जाती थी। कुछ ऐसी नदियाँ भी थी जिनकी पूजा से पुत्र होने की कल्पनाएँ की गई थी, जिनमें जीवछ नदी और कमला नदी प्रमुख थी। एक और नदी, जिसके तट पर भगवती उच्चैट (मधुबनी) और उग्रतारा (महेषी) का वास है, को धेमुरा नाम से जाना जाए या विद्या प्राप्ति के लिए पूजा जाता था। कहते हैं कि इन नदियों में स्नान और पूजा से सभी मनोकामनाएँ पूरी होती थीं; जो आज भी माना जाता है। इतना ही नहीं, उपरोक्त देवताओं को बलि देने की प्रथा थी।

अब, तीसरा वर्ग जो ‘अछूत’ था जिसके छाया तक से दूर रहने की परिपाटी थी और जिनका वास गाँव से दूर⁽¹¹⁾ दिया जाता था, उन लोगों में भी एक विशेष पूजा की परिपाटी थी, जिसे दीपावाली के रोज खास ढंग से मनाया जाता था। उसे ‘हुडाहुडी’ कही जाती थी और ‘हुडाहुड’ की इस पूजा में सुअर को भैंसों और साँड़ों से लड़ाया जाता था। यह मजेदार खेल भी होता था और समाज में इससे मनोरंजन भी होता था।

यहाँ, यह स्मरणीय है कि यह प्रथा थोड़े परिवर्तनों के साथ सिंधु घाटी में भी थी। किन्तु इसमें दो साँड़ों का खेल होता था, जबकि बेबीलोनिया में बकड़ों को लड़ाया जाता था। वहीं सीरिया में साँड़ों से पहलवानों को लड़ाने की प्रथा थी। इस तरह, देखती हूँ कि बहुत सारी पूजा की पद्धतियाँ मन बहलाव से भी जुड़ी हुई

थी। समाज में देवताओं, पितरों, भूतों आदि का भय व्याप्त था। इसके अलावे डायन और जादूगरों की जमात भी हुआ करता था जिससे लोग डरा करते थे। वे कभी तो उनका उपकार करते थे और कभी अपकार भी करते थे। इनकी अपनी कोई पहचान नहीं होती थी। इनके बारे में चर्चा हुआ करती थी और चर्चा के आधार पर ही ये जाने जाते थे।

उपरोक्त सभी बातों के बावजूद जहाँ देवताओं में शिव, राम, कृष्ण और हनुमान प्रमुख थे। वहीं देवियों में दुर्गा, काली, सरस्वती, लक्ष्मी, पंचभागिनी, त्रिपुर सुन्दरी की पूजा भी प्रमुख था। किन्तु मध्यकाल के आते-आते देवी और देवताओं का स्वरूप बदल दिया गया और जिस तरह लोग पंचभागिनी, त्रिपुर सुन्दरी को पूजते थे ठीक उसी तरह सम्पूर्ण मिथिला में सुर्यादि पंचदेवता के पूजने की प्रथा प्रारंभ हो गई, जो आज भी समाज में उसी रूप में स्वीकार किया जाता है। आज भी जब कभी कोई बड़ी पूजा होती है तो वह सुर्यादि पंचदेवता की पूजा से ही प्रारंभ होती है।

इसके अलावे नाग-देवता और विषहरा की पूजा भी मिथिला में अत्यधिक सम्मान के साथ की जाती है। आज भी मिथिला के वैवाहिक कार्यक्रम के बाद जो यूरोपीय हनीमून की तरह 'मधुश्रावणी' नाम की पूजा की जाती है उसमें सर्प की पूजा अर्थात् नाग की पूजा और नाग के साथ-साथ नागिन वृषहरा की पूजा का प्रमुख स्थान है। उनके लिए एक खास तीर्थ नागपंचमी की तिथि को निर्देशित किया गया है। इस संदर्भ में नवदम्पति को एक लम्बी-मार्मिक एवं रोचक कथा सुनायी जाती है जिसे विशेष सम्मान दिया जाता है। मधुश्रावणी की कथा में भगवान शिव की पुत्री लीली और चनाई की कथा भी आती है, जो बड़ा ही विलक्षण एवं मनोरंजक हैं और इसके संदर्भ में यह कहा जाता है कि लड़कियों को सौभाग्य प्राप्त होता है।

कुमारी अवस्था में योग्य एवं सुन्दर वर की प्राप्ति के लिए समाज के उच्च वर्ग की कुमारी लड़कियाँ तुषारी पूजन प्राचीन काल से मध्यकाल तक किया करती थीं। समाज के सभी वर्ग की औरतें नैहर से लेकर पीहर तक सामा-चकेवा की पूजा किया करती हैं; यह कितनी पुरानी प्रथा है यह तो कोई नहीं जानता। किन्तु सिंधु घाटी के समकालीन मिथिला के मधुबनी जिला अन्तर्गत बलिराजगढ़ की खुदाई से सन् 1962 ई0 में (आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया अर्थात् भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के साथ-साथ निदेशक बिहार पुरातत्व के सम्मिलित प्रयास से) जो सबसे महत्वपूर्ण वस्तु प्राप्त हुई वह सामा-चकेवा की मूर्ति थी जिसे पुरातत्ववेत्ताओं ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरातात्विक साक्ष्य माना था। अतः यह मिथिला के इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण है। सोलहवें तीर्थकर मल्लिनाथ की बहुत छोटी (1 1/2"×1") की मूर्ति भी खोज निकाली गई थी। जिसने धर्म के इतिहास की विवादी पहलु को सुलझा दिया। इसके पहले विवाद यह था कि मल्लिनाथ⁽¹²⁾ पुरुष थी या महिला। उस मूर्ति में (जो सम्पूर्ण रूप से एक औरत थी) यह स्पष्ट कर दिया कि मल्लिनाथ सभी कोणों से एक महिला थी और यह विश्व-इतिहास की पहली महिला थी जिसे पुरुष प्रधान समाज ने एक पुरुष तीर्थकर के रूप में मात्र स्वीकारा ही नहीं बल्कि उन्हें ईश्वर का स्थान देकर अर्थात् जैन धर्म के 16वें अवतार के रूप में सम्मानित किया और पूजा।

निम्न वर्ग की महिलाओं को भी मिथिला के समाज में समानता का दर्जा प्राप्त था और उनके खेल में तथा पूजा-विधानों में मध्यमवर्गीय कुलीन महिलाएँ भी हिस्सेदारी करती थीं, उस काल में दुर्गा पूजा के दिनों में अर्थात् देवी-पक्ष में जो धार्मिक कुप्रथाओं (मेरा मतलब तंत्र परम्परा से है जिसका मुख्य हिस्सा ही डायन हुआ करती थी) से समाज को डराने की कोशिश की जाती थी, उससे निबटने के लिए मिथिला की महिलाओं ने एक झिझिया नामक खेल-तंत्र प्रारंभ किया। उसमें नृत्य के साथ झरनी युक्त घरों को माथे पर लेकर उनमें दीप जलाकर जो नाचने की प्रथा प्रचलित हुई उसमें हिस्सेदारी करके महिलाओं ने समाज के विभिन्न तबकों के बच्चों को तांत्रिकों, योगिनियों,

डायनों से बचाव प्रारंभ की थी। क्योंकि, यह एक प्रकार से देवी पूजा की हिस्सेदारी थी, जो बाद में चलकर मिथिला की लोकप्रथा और लोकनृत्य⁽¹³⁾ के रूप में जानी गई और दुर्गा पूजा से इसका सीधा संबंध हो गया। पूजा की यह विधान मिथिला के ग्रामीण तंत्र में आज भी उसी रूप में देखा जा सकता है। इसके पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में दरभंगा शहर के मध्य अवस्थित चन्द्रधारी संग्रहालय में सरकार ने बच्चों के मनोरंजन के लिए एक थिमेटिक पार्क बनाया है और उसमें इस प्रथा की मूर्ति बनाकर रखी गई है जो मिथिला की इस प्राचीन परम्परा को एक धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान करती है।

तत्पश्चात् एक दूसरी प्रथा जो समाज के सर्वाधिक न्यूनतम वर्ग (जिन्हें आज हम अत्यन्त पिछड़ा वर्ग कहते हैं और जिसका सीधा संबंध कृषिकर्मियों, जिसमें मुसहर, धांगर, डोम, हलखोर जैसी जातियों से है) में प्रचलित था वह है भू-देवी⁽¹⁴⁾ और कृषि-देवता का पूजन। इसका प्रारंभ भी तीसरी ईसा सन् में हुआ और इसे झरनी नृत्य कहा गया, जिसमें झाडू और अन्य कृषि यंत्रों जैसे-कुदाल, टोकरे, खुरपी आदि के साथ नृत्य करने की परिपाटी प्रारंभ हुई। दरभंगा म्यूजियम के थिमेटिक पार्क में मूर्तियों के द्वारा यह प्रदर्शित करने की प्रयास की गई है कि कृषि यंत्र में कुदाली, खुरपी, टोकरी के साथ-साथ निम्नता से अंतिम स्तर पर रखा जाने वाला झाडू भी पूजनीय है और इसका भी संबंध कृषि देवता से है। वस्तुतः यह लोक-पर्व जो कटनी के बाद अगहन महिने में मनाया जाता था दक्षिण भारतीय त्यौहार पोंगल या सिंधुघाटी की सभ्यता वाली क्षेत्र पंजाब में इसी समय लोहड़ी जैसी धार्मिक प्रथा के रूप में प्रचलित है तो मिथिला में इसे बड़े लोग मकर-संक्राति या तिल-संक्राति कह कर मनाते हैं। वस्तुतः, यह पूजा पद्धतियाँ भारतीय इतिहास की सांस्कृतिक धरोहर ही नहीं है बल्कि यहाँ की सभ्यता की परम्पराओं से जुड़ी हुई बहुमुखी संसाधन हैं जो मिथिला और देश की इतिहास की अनेकता में एकता वाली तथ्यों को उजागर प्रतीत होती हैं। वस्तुतः ये वो पद्धतियाँ है जो भारत के सर्वे भवन्तु सुखिनाः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चित् दुःख भागभवेत्॥ वसुधैव कुटुम्बकम् जैसी निर्मल एवं सुहृद सिद्धांतों को जग जाहिर करते हैं।

निष्कर्ष

मध्यकाल में इन सबों के अलावे जो सम्पूर्ण भारत के प्रसिद्ध और महान संत हुए उनमें चैतन्य महाप्रभु के नाम (तत्कालिक गृह-ग्राम मिथिला का बलिराजगढ़ था) अग्रणी हैं। इनके पिता को प्रचुर धन प्राप्त होने के कारण मिथिला से बंगाल के नदियाँ जिले के नवद्वीप ग्राम में जाकर बस गए। किन्तु ये मूलतः मिथिला के ही संत हैं और इतिहास में मिथिला के आधुनिककालीन संत परम्परा के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। यहाँ यह कहना अति आवश्यक है कि ये सभी संत मिथिला के शाक्त और तंत्र परम्परा से जुड़े व्यक्ति रहे हैं चूँकि तंत्र में या भक्ति में जैसा कि नवधा-भक्ति में कहा भी गया है कि भक्ति की कोई भी विद्या मातृ शक्ति से प्रभावित हुए बिना सिद्धि-कारक नहीं होती अतः निमाई चन्द्र जो कृष्ण भक्त हैं; राधा की पूजा के बिना अधूरे हैं। वे स्वयं राधा बन जाते थे। बांकी भक्तों के पीछे भी किसी न किसी रूप में दुर्गा, काली, पंचभागिनी, पंचभगी त्रिपुर सुन्दरी, दक्षिण कालिका, ज्वालामुखी आदि देवियों का प्रमुख स्थान रहा है।

संदर्भ-सूची

1. पूजापद्धति एवं हिन्दू धर्मशास्त्र पी.वि. कर्ण, कलकत्ता।
2. डा. ईश्वरी प्रसाद : मुगलकालीन भारत।
3. भौतिकी विज्ञान की सभी पुस्तकों में द्रष्टव्य।
4. वही धर्मशास्त्र
5. सभी इतिहास की पुस्तकों में सिन्धुघाटी की सभ्यता के

अध्याय में।

6. वहीं धर्मशास्त्र एवं इतिहास
7. शैवधर्म का इतिहास: बैथम मणि बम्बई
8. पुराणों का काल 10वीं शदी है जो मध्यकालीन भारत के इतिहासों में अंकित है।
9. सभी इतिहास की पुस्तकें द्रष्टव्य हैं।
10. मिथिला का सामाजिक इतिहास डा. जटाधर झा, पृष्ठ-36
11. इतिहासकार रोमिला थाप्पर की पुस्तक प्राचीन भारत का इतिहास
12. ल.ना.मि. विश्वविद्यालय का अप्रकाशित शोध प्रबंध-11 जैन धर्म में प्रमुख गजधर शोधकर्ता आर. कुमार पृष्ठ-179 तथा चित्र लेट फलक-2:1 द्रष्टव्य हैं।
13. लोक नृत्य : श्री भूपेन्द्र कुमार चौधरी की अप्रकाशित शोध प्रबन्ध ल.ना.मि. वि.वि. मैथिली विभाग द्रष्टव्य हैं।
14. भू देवी सभी इतिहास की पुस्तकों जो सिन्धु घाटी की सभ्यता से सम्बन्धित हो हैं द्रष्टव्य हैं।